प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद - 431 001.

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास १

शुभाशीर्वाद

अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरि म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शक- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

श्री नवकार

पंच परमेष्ठी नमस्कार सूत्र

नमो अरिहंताणं १
नमो सिध्दाणं २
नमो आयरियाणं ३
नमो उवज्झायाणं ४
नमो लोए सव्व साहूणं ५
अेसो पंच नमुक्कारो ६
सव्व पावप्पणासणो ७
मंगलाणं च सव्वेसिं ७
पढ़मं होई / हवइ मंगलं ९

शब्दार्थ

नमो : नमस्कार हो
अरिहंताणं : अरिहंतों को
सिध्दाणं : सिध्दों को
आयरियाणं : आचार्यों को
उवज्झायाणं : उपाध्यायों को
लोए : लोक में
सव्व : सभी
साहूणं : साधुओं को
अेसो : इन
पंच नमुक्कारो : पाँच को किया हुआ नमस्कार
सव्वपाव : सभी पाप का
प्पणासणो : विनाश करनेवाला
मंगलाणं : मंगलो में
च : और
सव्वेसिं : सभी में
पढ़मं : प्रथम, पहला
हवई / होई : है
मंगलं : मंगल

अर्थ - अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो १. सिध्द भगवान को नमस्कार हो २. आचार्य भगवंत को नमस्कार हो. ३. उपाध्याय भगवंत को नमस्कार हो ४. ढाई द्वीप रुप लोक में रहे हुए सभी साधुओं को नमस्कार हो. ५. इन पांचो को किया हुआ नमस्कार ६. सभी पापों का नाश करनेवाला है ७. और सभी मंगलो में . ८. प्रथम मंगल है ।

विशेषार्थ : इस महामंत्र में पाँच परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है, इससे इसका दूसरा नाम ''पंच मंगलसूत्र'' अथवा '' पंच परमेष्ठीस्तव'' ऐसा भी कहा जाता है । उसी प्रकार इसके नौ पद होने से नवकार भी कहलाता है ।

नमस्कार यह सन्मान और आदर की भावना व्यक्त करने का उच्च साधन है, नम्रता और भक्ति का प्रतीक है तथा कृतज्ञता का संकेत है ।

इस नवकार मंत्रका उपयोग धर्मानुष्ठान, धार्मिकोत्सव, अध्ययन, भोजन, शयन, निद्रात्याग, प्रस्थान, प्रवेश, भय, कष्ट-रोग, मरण आदि सभी समय पर करने का शास्त्रकारों ने कहा है ।

नवकार मंत्र के स्मरण से सिंह, हाथी, अग्नि, सर्प, जल, बंधन, चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस, भूत, शाकिनी संग्राम, शत्रु इत्यादि के भय संकट आदि नाश हो जाते है, और मोक्ष तक के सभी सुखों की प्राप्ति होती है सभी संपति को प्राप्त करानेवाला, सभी दुखः कष्टो कों दूर करने वाला, चौदहपूर्व का सारभूत, नवकार मंत्र समान तीन लोक में कोई महान मंत्र नहीं ।

कायोत्सर्ग में एक नवकार मंत्र गिनने से उन्नीस लाख, त्रेसठ हजार, दो सौ सडसठ पल्योपम का देवताका आयुष्य बंधता है ।

इस भव में भी इच्छित को देने वाला ऐसा चिन्तामणीरत्न, कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामघट आदि से अरिहंत पद और सिद्धपद के साथ शाश्वत सुख को देने वाला श्री नवकार महामंत्र महान है ।

नवकार मंत्र का एक अक्षर सात सागरोपम के पाप को, एक पद पचास सागरोपम के पाप को तथा पूर्ण नवकार यानि नवपद पांचसो सारगोपम के पापों का नाश करता है ।

परम उच्च स्थान पर जो रहें वो परमेष्ठी कहलाते है । ऐसे पांच परमेष्ठी इस सूत्र में है । जिसमें अरिहंत और सिद्ध ये दोनों को देवस्वरुप, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों को गुरुस्वरुप नमस्कार करने में आया है ।

पंच परमेष्ठी में अरिहंत का सफेद (श्वेत) सिद्ध का लाल, आचार्य का पीला, उपाध्याय का हरा और साधु का श्याम (काला) रंग है ।

पंच परमेष्ठी में अरिहंत के १२ (बारह) गुण, सिध्द के ८ (आठ) गुण, आचार्य के ३६ (छत्तीस) गुण, उपाध्याय के २५ (पच्चीस) गुण और साधु के २७ (सत्तावीस) गुण है । सभी मिलकर १०८ (एक सो आठ) गुण है । इनकी आराधना के लिये नवकारवाली के १०८ मनको की माला भी गिनते है ।

अरिहंत भगवान और उनके बारह (१२) गुणों का वर्णन

अरिहंत भगवान ने चार कर्म का क्षय किया है, फिरभी समीप के उपकारी होने से, आठ कर्म का क्षय करने वाले सिध्द भगवान से भी पहले उन्हे नमस्कार करने में आया है ।

अरिहंत : राग-द्वेष रुपी कर्म शत्रु को जीतकर, चार घाती कर्म का क्षय करके, केवलज्ञान प्राप्त कर, भव्य जीवों को बोध देते अथवा बोध देने के लिये विचरते तीर्थंकर भगवान वो अरिहंत । उनके आठ प्रातिहार्य और चार अतिशय (अद्‌भुत गुण) मिलाकर कुल बारह गुण होते है, जो निम्नानुसार हैं.....

१. अशोकवृक्ष : जहाँ अरिहंत भगवान के समवसरण की रचना होती है वहाँ उनके देहमान से बारह गुना ऊँचा अशोक वृक्ष देवताओं के द्वारा रचा जाता है, उसके नीचे बैठकर प्रभु देशना (उपदेश) देते हैं ।

२. सुरपुष्पवृष्टि : समवसरण की एक योजन प्रमाण भूमि में देवता घुटनों तक, पानी में और जमीन पर उत्पन्न होने वाले पांच वर्ण के सुगंधी सचित्त पुष्पों की वृष्टि करते हैं ।

३. दिव्य ध्वनि : भगवान की मालकोश राग वाली वाणी के साथ वीणा, बांसुरी आदि वाद्यो से देवता उसमें स्वर मिलाते हैं ।

४. चँवर : रत्नजडित सोने की डंडी वाले चार जोडी श्वेत चँवर समवसरण में देवता भगवान को डुलाते हैं ।

५. आसन : समवसरण में भगवान को बैठने के लियें रत्नजडित सोने के सिंहासन की रचना देवता करते हैं ।

६. भामंडल : भगवान के मस्तक के पीछे शरद ऋतु के सूर्य की किरणों जैसा उग्र तेजवाले भामंडल की रचना देवता करते हैं, जिसमें भगवान का तेज संक्रमित होता है ऐसा न करें तो भगवान के मुख के सामने भी हम देख न सकें।

७. दुंदुभि : भगवान के समवसरण के समय देवता देव-दुंदुभि वगैरह वाद्ययंत्र बजाते हैं, जो यह सूचित करते है कि · हे भव्य लोगों, तुम शिवपुर के सार्थवाह तुल्य भगवानकी भक्ति करो।

८. छत्र : समवसरण में भगवान पूर्व की और मुख करके बैठते है, और दुसरी तीन दिशा में देवता उन भगवान के प्रतिबिम्बों की स्थापना करते हैं। उनके मस्तक के उपर शरदपूर्णिमा के चन्द्र जैसे सफेद मोती की लडियों से सुशोभित एक दूसरे के उपर उपर तीन तीन छत्र की रचना करते हैं, जिससे कुल बारह छत्र होतें हैं। अन्य समय तीन ही छत्र होते हैं। समवसरण न हो तब भी अरिहंत प्रभु के साथ ये आठ प्रातिहार्य होते ही हैं।

प्रतिहार्य याने जो प्रतिहारी दरवाजे के द्वारपाल की तरह प्रभु के पास रहते है वो। प्रभावसूचक लक्षणवाले, उत्कृष्टता वाले, विशिष्ट चमत्कार वाले अतिशय रुप चार गुण निम्नलिखित हैं -

९) अपायापगमातिशय - उपद्रव का नाश करने वाला अतिशय जिसके दो प्रकार है - १) स्वाश्रयी २) पराश्रयी. स्वाश्रयी अतिशय यानि स्वयं के संघ में उपद्रव का नाश करनेवाला, ये द्रव्य से और भाव से इस तरह दो प्रकार है।

द्रव्य उपद्रव : सभी प्रकार के बाह्य रोग।
भाव उपद्रव : नीचे के अठारह अंतरंग दूषण (दोष)

१) दानांतराय २) लाभांतराय ३) भोगांतराय ४) उपभोगांतराय ५) वीर्यांतराय ६) हास्य ७) रति ८) अरति ९) भय १०) शोक ११) निंदा १२) काम १३) मिथ्यात्व १४) अज्ञान १५) निद्रा १६) अविरती १७) राग १८) द्वेष ये अठारह दूषण दुसरे प्रकार से भी गिने जाते हैं। इस प्रकार स्वाश्रयी अपायापगम अतिशय जानना।

१) पराश्रयी अपायपगम अतिशय : जिससे अन्य के उपद्रव नाश हो यानि जहाँ भगवान विचरते हैं, वहाँ प्रत्येक दिशा में मिलकर सवासो योजन तक प्रायः रोग मरकी, वैर, अतिवृष्टि, दुष्काळ वगैरह नहीं होते।

२) ज्ञानातिशय :- जिससे भगवान लोकालोक के सम्पूर्ण स्वरुप को सभी प्रकार से जानते हैं, कारणकि उन्हें केवलज्ञान है जिससे कुछ भी उनके ज्ञान बाहर नहीं रह सकता।

३) पूजातिशय : श्री तीर्थंकर प्रभु सभी को पूज्य हैं, यानि कि राजा, वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती, देवताओं और इन्द्रो वगैरह सभी उन्हें पूजते हैं अथवा उन्हें पूजने की अभिलाषा करते हैं।

४) वचनातिशय :- श्री तीर्थकर प्रभु की वाणी देव, मनुष्य और तिर्थंच सभी अपनी अपनी भाषा में समझते हैं। क्योंकि उनकी वाणी सभी भाषा में समझ सकें ऐसी संस्कारित पैंतिस गुणों वाली होती है।

श्री तीर्थंकर प्रभु की वाणी के ३५ गुण निम्न प्रकार से हैं -

१) सभी जगह समझ सके ऐसी २) योजन प्रमाण सुनाई दे ऐसी ३) प्रौढ ४) मेघ जैसी गंभीर ५) शब्दों से स्पष्ट ६) संतोषकारक ७) प्रत्येक मनुष्य को ऐसा लगे जैसे प्रभु उसे ही कह रहें हैं ऐसी ८) पुष्ट अर्थ वाली ९) पूर्वापर (आगे-पीछे) विरोध रहित १०) महापुरुषों को शोभे ऐसी ११) संदेह बिना की १२) दूषण रहित अर्थ वाली १३) कठिन विषय को भी सरल करे ऐसी १४) जहाँ जैसा शोभे वैसा ही बोले १५) षट्द्रव्य और नवतत्व को पुष्ट करे ऐसी १६) प्रयोजन सहित १७) पदरचना सहित १८) छः द्रव्य और नवतत्व से पटुता (दक्षता) सहित १९) मधुर २०) पराया मर्म पता न चले ऐसी चतुराईवाली २१) धर्म-अर्थ प्रतिबद्ध २२) दीप समान प्रकाश अर्थ सहित २३) परनिंदा और स्वयं की प्रशंसा बगैर की २४) कर्ता, कर्म, क्रिया, काल विभक्ति सहित २५) आश्चर्यकारी २६) वक्ता सर्व गुण संपन्न है ऐसा जिसमें लगे ऐसी २७) धैर्यवाली २८) विलंब रहित २९) भ्रांति रहित ३०) सभी अपनी अपनी भाषा में समझ लें ऐसी ३१) शिष्टबुद्धि उत्पन्न करे ऐसी ३२) पद के अर्थ को अनेक प्रकार से विशेष रुप से स्थापित कर बोले ऐसी ३३) साहसिकतासे बोली जानेवाली ३४) पुनरुक्ति दोष रहित ३५) सुनने वालों को खेद उत्पन्न न हो ऐसी।

श्री अरिहंत भगवंत के ३४ अतिशय होते है - वे इसप्रकार

१) शरीर अनंतरुपमय, सुगंधमय, रोगरहित, प्रस्वेदरहित और मल रहित होता है। २) रुधिर और मांस गायके दूधसमान श्वेत और दुर्गंधरहित होते हैं। ३) आहार और विहार चर्मचक्षुसे अदृश्य होते हैं। ४) श्वासोच्छवास में कमल जैसी सुगंध होती है। ये चार अतिशय जन्मसेही होते हैं। अतः उन्हे सहजातिशय कहते हैं। ५) योजन प्रमाण समवसरण में कोटाकोटी मनुष्य, देव और तिर्थंच का समावेश हो जाये फिर भी किसी को अडचन नहीं होती। ६) चारों और पचीस पचीस योजन तक पूर्वोत्पन्न रोगों का शमन हो जाये और नये रोग उत्पन्न नहीं होते। ७) वैरभाव मिट जाये ८) मरकी (रोग) न हो ९) अतिवृष्टि यानि हद से ज्यादा बारिश नहीं होती १०) अनावृष्टि बारिश का अभाव नहीं होता ११) दुष्काल नहीं पडता १२) स्वचक्र याने स्वयं के राज्य की तरफ से, परचक्र यानि परराज्य की तरफ से भय नहीं होता १३) भगवान की वाणी देव, मनुष्य और तिर्यंच अपनी अपनी भाषा में समझे १४) एक योजन तक अच्छी तरह से भगवंत की वाणी सुनाई दे। १५) सूर्य से बारह गुना ज्यादा तेजवाला भामंडल प्रभु के पीछे मस्तक के पास होता है। ५ से १५ तक ११ अतिशय केवलज्ञान होता है तब होते हैं इससे इन्हे ''कर्मक्षयजातिशय'' कहते हैं। ६ से १२ तक ७ रोगादि उपद्रव भगवान विहार करते हैं तब भी चारों दिशा में २५-२५ योजन तक नहीं होते। १६) आकाश में धर्मचक्र होता है

१७) बारह जोडी (२४) चंवर बिना डुलाय डुलते रहते हैं १८) पादपीठ सहित स्फटिक रत्नमय उज्वल सिंहासन होता है १९) तीन छत्र (समयवसरण के समय प्रत्येक दिशामें) होते हैं । २०) रत्नमय इन्द्रध्वज होता है २१) नव सुवर्ण कमल के उपर चलते है '' दो पर पैर रखें और सात पीछे रहे उसमें से बारी बारी दो दो आगे आयें। २२) मणि, सुवर्ण और रुपाके (चांदी) इस प्रकार तीन गढ़ होते हैं । २३) चार मुख से देशना दे रहे है ऐसा दिखता है । ''पूर्व दिशा के सन्मुख प्रभु बैठते है, बाकी तीन दिशा में तीन प्रतिबिंब व्यंतरदेव स्थापित करते हैं । २४) स्वशरीर से बारहगुना ऊँचा अशोक वृक्ष, छत्र, घंटा, पताका आदि से युक्त होते हैं । २५) काँटे अधोमुख यानी उल्टे हो जाते हैं । २६) चलते समय सभी वृक्ष झुककर प्रणाम करते हैं । २७) चलते समय आकाश में दुंदुभि बजे २८) अेक योजन तक अनुकुल वायु बहे २९) मोर वगैरह अच्छे पक्षी प्रदक्षिणा देते हुए फिरे ३०) सुंगधी जल की वृष्टि होती है । ३१) जल-थल में उत्पन्न हुए पांचवर्णी सचित्त फूलों की घुटनों तक वृष्टि होती हैं । ३२) केश, रोम, दाढी मूंछ के बाल और नाखून दीक्षा लेने के पश्चात बढते नहीं ३३) सर्व ऋतुअें अनुकूल रहती है ३४) जघन्य से कोटी देवता का परिवार होता है ।

ये आखरी १६ से ३४ तक १९ अतिशय देवता करतें हैं, जिससे देवकृतातिशय कहलाते हैं ।

अन्य देवताओं से भी विशेष श्री अरिहंत परमात्मा की विशेषता बताने के लिये शास्त्रकार महर्षीओं ने इन चौंतीस अतिशयों का वर्णन किया है । सभी मिलकर चौंतीस अतिशयों का बारह गुणों में समावेश कर उन्हें श्री अरिहंत परमात्मा के बारह गुणों के रुप में भी बतलाया गया है ।

सिध्द भगवान और उनके आठ गुणों का स्वरुप

आठ कर्म का क्षय करके जिन्होनें अंतिम साध्य ऐसे मोक्ष पद को साधा है वो सिद्ध । सिद्ध भगवान के आठ गुण निम्न प्रकार से हैं -

१) अनंतज्ञान - ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से अनंत केवल ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे सर्व लोकालोक का स्वरुप समस्त प्रकार से जानते हैं ।

२) अनंत दर्शन - दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से अंत बिना का केवल दर्शन प्राप्त होता है, जिससे लोकालोक के स्वरुप को देखते हैं ।

३) अव्याबाध - वेदनीय कर्म के सर्वथा क्षय होने से सर्व प्रकार का पीडा रहित निरुपाधी पन प्राप्त होता है ।

४) अनंत - चरित्र - मोहनीय कर्म के क्षय होने से अनंत चरित्र गुण की प्राप्ती होती है, जिसमें क्षायिक सम्यकत्व और यथाख्यात चारित्र का समावेश होता है ।

५) अक्षय स्थिति - आयुष्य कर्म का क्षय होने से कभी भी नाश न हो ऐसी स्थिती प्राप्त होती है । सिध्द की स्थिती की आदि है पर अंत नही है, इसलीये उनकी स्थिति सादि फिर भी अनंत कहलाती है ।

६) अरूपीपन - नामकर्म के क्षय होने से वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित होते हैं, क्योंकि शरीर हो तो ही वर्ण आदि होते हैं, किंतु सिध्द को शरीर नहीं है , इसलिये उन्हें अरूपीपन प्राप्त होता है ।

७) अगुरु लघु - गोत्र कर्म के क्षय होने से यह गुण प्राप्त होता है, जिससे भारी-हलका या ऊँच-नीच पन का व्यवहार रहता नहीं ।

८) अनंतवीर्य - अंतराय कर्म के क्षय होने से अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग और अनंत वीर्य ये गुण प्राप्त होते हैं, यानि उन्हें अनंत शक्ति प्राप्त होती है । समस्त लोक को अलोक और अलोक को लोक कर सकें ऐसी शक्ति स्वाभाविक रुप से सिद्ध में रही हुई है । फिर भी ऐसा वीर्य स्फुरित करते नहीं और करेंगें भी नहीं, क्योंकि पुदगल के साथ की प्रवृत्ति उनका धर्म नहीं । इस गुण से स्वयं के आत्मिक गुणों को वैसे के वैसे रुप में रखते हैं, फेरबदल होने देते नहीं । इस प्रकार सिध्द के आठ गुण हुए ।

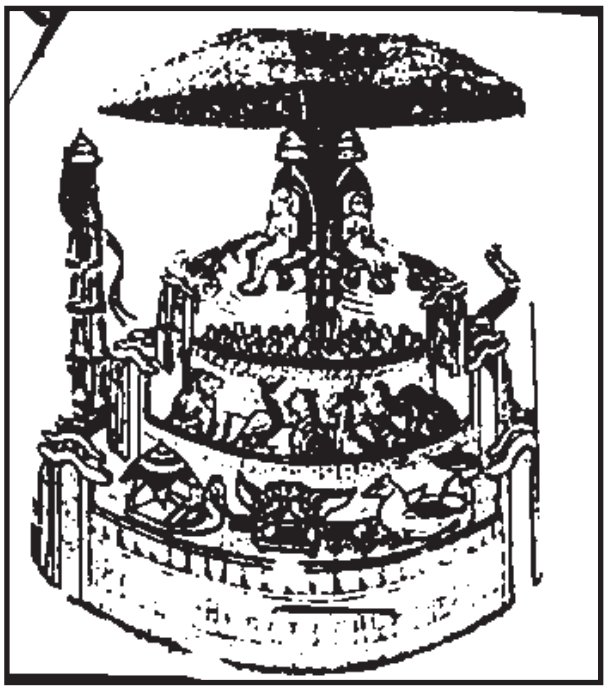

मानवभव की दुर्लभता

शास्त्रकार महर्षिओं ने मानव भव को दस दृष्टांतो से दुर्लभ बताया है । दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त कर उसे व्यर्थ न गँवाये यह बात समझने के लिये यहाँ दस दृष्टांत बताये हैं ।

दृष्टांत -१

एक था गांव .....

संयोग से इस गांव में....

एक साधु और एक ठाकुर पास पास रहते थे । एक समय बहुत रात व्यतीत होने के बाद अंतिम प्रहर में दोनों ने एक स्वप्न देखा । पूर्ण चंद्रको उन्होंने निगल लिया है - स्वप्न देखते हि दोनों की आँख खुल गयी ।

साधु तुरंत उठकर दौडे महन्त के पास । उनसे कहां - ''गुरुजी ! आज स्वप्न में मैंने संपूर्ण खिले हुअे चंद्रमा को निगल गया हुँ, ऐसा देखा - गुरुजी, मुझे इसका क्या फल मिलेगा ?

गुरुजी भोजनानंदी थे । उन्होंने स्वप्न फल बताते हुए कहा - आज अति उत्तम स्वप्न देखकर तू जागा है, तुझे अवश्य सुंदर फल मिलेगा । आज तुझे घी से लथपथ पूरी की पूरी रोटी मिलेगी ।

सचमुच साधु को भिक्षा में वैसी ही घी से लथपथ रोटी मिली, वह खुश हो गया ।

बाजु में बैठे ठाकूर ने यह सुनकर सोचा ''नहीं, ऐसे उत्तम स्वप्न का ऐसा अल्प फल नहीं हो सकता ! कुछ सविशेष फल मिलना चाहिये'' ।

ठाकूर आगे गया । ज्ञानी गुरु मिलते हि चांदी के रुपयों से उनकी चरणपूजा कर स्वप्न की बात कथन की फल पूछा । गुरु भगवंतो ने उसका विनय और नम्र स्वभाव देखा प्रसन्न होकर कहा - महानुभाव ! आपका पुण्योदय शीघ्र ही होगा, तुम राज्य के स्वामी बनोगे ।

पुनः गुरुचरणों में प्रणाम कर उपाश्रय के बाहर आये तो वहाँ हाथिनीने उसके मस्तक पर अभिषेक कर उसे सम्राट पद पर पहुँचा दिया ।

नगर में ठाकूर के स्वप्न की बात होने लगी । बात फैलने लगी । साधु ठाकूर को राजसिंहासन पर बिराजमान देखकर आश्चर्यान्वित हुआ ।

साधु राज्यप्राप्तीकी इच्छासे बहुत बार सोया - बहुत बार जगा -

पर दुसरी बार उसे चन्द्रदर्शन हुए ही नहीं ।

मानवभव के महत्व को और उसकी दुर्लभता को समझाते हुए जिनेश्वर परमात्मा के शास्त्र कहते है कि - साधु के लिये चंद्रका स्वप्न देखना संभवित है परंतु नरभव पाने के बाद जिसने व्यर्थ गंवाया उसके लिये पुनः मानवभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

दृष्टांत - २

एक था कछुआ ।

बहुत बडे विशाल जलाशय में उसका निवास । एकबार अचानक उसे शरदपूनम के चंद्रमा के दर्शन हुए । वह चंद्र दर्शन से अत्यंत आनंदित हुआ ।

उसके मनमें विचार आया, '' ऐसे मनोहर चंद्र का दर्शन कराकर मेरे परिवार को भी आनंदित करुं'' उसने पानी के अंदर गहरी डुबकी लगाई, थोडे ही समय में अपने परिवार को लेकर आया । पर इतने समय में हवा के झोंके से पानी के उपर काई आ गयी । जिससे वे चंद्रमा को देख न पाये । कछुअे को बहुत अफसोस हुआ ।

वह अपने परिवारको शरदपूनम के चंद्र के दर्शन

न करा पाया । कछुआ रोज प्रयत्न करता है, सेंकडो साल बीत गये पर वह चंद्रदर्शन न करा पाया, न कर सका ।

देवाधिदेव अरिहंत प्रभुका शासन कहता हैं, ''कदाचित विशेष प्रयत्न किये जाये तो कछुआ अपने परिवार को चंद्रदर्शन करा भी सके परंतु जो जीव एकबार मानवभव पाकर अपना अनमोल जीवन व्यर्थ नष्ट कर देते हैं उन्हे फिरसे मानव भव की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ३

एक देव है ।

अपनी शक्ति से एक बडे स्तंभ का पावडर बनाता है । इस पावडर को ऐक नली में भरकर मेरु पर्वत पर ले जाता है । मेरु पर्वत पर चढकर नली में फूंक मार मारकर इस पावडर को चारों ओर दस दिशामें बिखेर देता है । फिर यदि कोई आज्ञा करे कि अब स्तंभ जैसा था वैसा बना दो तो क्या बन सकता है ?

देवताओं के लिये भी पूज्य ऐसा देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा का शासन कहता है कि '' संभवित है कि कोई सिध्द पुरष बिखरे हुए अणुओंको जोडकर वैसाही स्तंभ बना दे परंतु जो व्यक्ति अपने महामूल्यवान मानवभव को प्राप्त कर पराजित हो जाय, उसके लिये फिरसे मनुष्यभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ४

एक थे जौहरी । वे रत्नों की परीक्षा करते ।

बहुमूल्य हीरोंका संग्रह करते । एकबार किसी कार्यवश उन्हे परदेश जाना पडा । परदेश से वापिस आये । घर आनेपर ज्ञात हुआ कि परदेश में थे उस समय उनके पुत्रों ने पानी के मूल्यपर दूरदूर देश से आये हुए व्यापारियों को उनके संग्रहित हीरे बेच दिये । जौहरी को अत्यंत गुस्सा आया । उन्होने पुत्रों को आदेश दिया ''जाओ, अभी के अभी व्यापारियों के पास जाकर मेरे रत्न हीरे वापिस लाओ'' । जब तक रत्न नहीं ला सकते तब तक घर वापिस न आना ।''

बच्चे बडे संकटमें आ गये । पिता के आदेश पर दूरदूर से आये हुए व्यापारियों को खोजने लगे । अतापता लगाने का प्रयास करने लगे । पर कोई पता नहीं लगा ।

देवाधिदेव श्री जिनेश्वर परमात्मा के शास्त्र कहते है कि - आज नहीं तो कल व्यापारियों का पता लग सकता हैं, रत्न वापिस मिल सकते है पर प्रमादवश आत्मसाधना के बिना ही जो प्राणी अपने मानवभव को नष्ट कर देते हैं उनके लिये फिरसे मानव भव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ५

यह है मथुरा नगरी ...
राजा है सम्राट जितशत्रु ...

उन्होने एक प्रतीज्ञा ली थी - ''मै मेरी राजकुमारी उसी राजकुमार को दूंगा जो राधवेधमें सफल होगा ।'' दूर दूर देशोमें समाचार भेजे । हजारो राजकुमार आये ।

सभी राजकुमारोनें उबलते हुए तेल की कडाही में देखकर बाजु के खंभे पर घुमते हुए आठ चक्रों के बीच तीव्र वेग से घुमती लकडे की पुतली के आंखकी काली कीकी को छेदने का प्रयास किया । परंतु एक भी राजकुमार को राधावेधमें सफलता नहीं मिली ।

देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान के वचनानुसार विशेष साधना से राधावेध में सफलता मिलना संभावित है पर जो मनुष्य प्राप्त हुए मनुष्यजन्मको प्रमादसे भौतिक सुखोपभोग में गँवा देता है उसे फिर से मानवभव मिलना अत्यंत दुर्लभ है ।

कैसा दुर्लभ है यह मानवभव, पर हमें मिल गया सहजतासे ।

नहीं नहीं ऐसा न समझना, जानते हुए या अनजानते हम पूर्व भव में कहीं कुछ सुंदर सत्कार्य करके ही आये है ।

अतः पुनः सत्कार्य करने के लिये अनकुल वातावरण और शक्ति मिली है । ऐसी मिली हुई अपूर्व सामग्री को ऐ मानवी व्यर्थ न गंवाना । जीवन को सफल बनानेका ऐसा अवसर पुनः पुनः मिलना जीव के लिये दुर्लभ है ।

सुकृतों से मिले हुए इस जीवनमें सुकृतोंकी परंपरा - उसमें सद् गति की परंपरा और अंत में उसी के द्वारा सिध्दी के शिखर सर करने का सौभाग्य तेरे ललाट में लिखा जाय इसलिये प्रमादका त्याग कर.... जागृत बनकर सावधान बनकर सही प्रवृत्तिमें लग जा ।

दृष्टांत - ६

भोजन का दृष्टांत (चूल्हे का)

एक था चक्रवर्ती - छ खंडोका अधिपति । एकबार एक भिक्षुक का पुण्य जागा.... चक्रवर्ती उसपर प्रसन्न हुआ । जो चाहिये मांग ले....

कह दिया - मांग मांग मैं आज तुझपर प्रसन्न हुआ हुं, जो चाहिये वह मांग ले ।

अंधा मांगे आँख और भूखा मांगे भात '' अनुसार इस भिक्षुक पर प्रसन्न हुए चक्रवर्ती से भिक्षुक ने वरदान मांगते कहा - मुझे ज्यादा कुछ नहीं चाहिये । बस हररोज भरपेट भोजन मिल जाय ऐसी कुछ व्यवस्था कर दो ।

चक्रवर्ती ने प्रसन्न होकर इस बात को स्वीकृत किया । छह खंडो के नगरजनों समक्ष घोषणा कर दी कि हररोज एकएक घरसे इसे भोजन मिलना चाहिये । और उसका शुभारंभ अपने राजप्रसाद से किया ।

नगर उपनगरों में भोजन करते हुए बरसों के उपर बरस बीत गये पर भिक्षुक को राजप्रासादसा भोजन कहीं नहीं मिला । भिक्षुक के मन में अब चक्रवर्ती के यहाँ के भोजन की चटपटी जागी । पर यह मिलने के लिये छहो खंडोंके नगरजनोंके घर में भोजन करना अनिवार्य था ।

देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा का शासन कहता है - भिक्षुक को किसी विशेष प्रसंग के, निमित्तसे अथवा याचना प्रार्थना करते कदाचित चक्रवर्ती के घर भोजन का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है परंतु प्रमादवश होकर जो व्यक्ति हाथ में आये हुए मनुष्य भव को व्यर्थ गँवा देते हैं उन्हें पुनः मनुष्यभव की प्राप्ति अति दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ७

सिध्दपासेका दृष्टांत

एक था जुआरी, रात दिन जुआ खेलनेमें ही बिताता था । पर उसके जीवन की एक विशेषता थी, वह किसी के भी सामने कभी भी हारता नहीं था । सदा उसीकी जीत होती थी । कारण क्या होगा ?

कारण था कि उसके पास सिध्द पासे थे । सिध्द पासों के बलसे उसे मनचाही सफलता मिलकर ही रहती थी । बहुत लोग आते, जुआरी को हराने का प्रयत्न करते पर खुद हारकर ही लौटते ।

प्रभु वीतराग देव का शासन कहता है कि कदाचित कोई विशेष सिध्दी मिलाकर आये - दैवी सहायता से इस जुआरी को हरा दे । जीत प्राप्त कर ले

पर प्राप्त हुए मानव भव को आत्मसाधना के बिना असफल बनाया है, व्यर्थ गंवाया है उन्हे फिरसे मानव भव की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ८

जगटों का दृष्टान्त

एक थी नगरी - नाम था रत्नपुरी
एक था राजा - नाम था शतायुध

एकबार राजा के गुप्तचर विचित्र समाचार लाये । उन्होने राजा से निवेदन किया कि राजन आपके सुपुत्र राजकुमार आपको मारकर, आपकी हत्या कर राज्य ग्रहण करना चाहते हैं ।

राजा बात सुन विचार में पड गये । क्या करना ? उन्हे कुछ सुझ नहीं रहा था । संसार में जीव सत्ता, संपत्ति और स्वार्थ के लिये कैसा खेल खेलते हैं । इसका उन्हें ख्याल आ गया । इस प्रपंच से बचने के लिये उन्होंने एक उपाय खोज निकाला । एक दिन राजकुमार को बुलाया । अपने पास स्नेह से बैठाकर कहा - '' बेटा, राज्यसत्ता को ग्रहण करने, राज्य मिलाने के लिये अपने यहाँ एक शर्त रखी है । इस शर्त की जो पूर्ति करता है वह भाग्यशाली माना जाता है और वह राज्य प्राप्त करता है ''।

राजकुमार पूछता है - ''पिताजी, यह कौनसी शर्त है ? ''

राजाजी ने बताया - बेटा, अपने राज्यसभामें रहे हुए १०८ कोने वाले १०८ खंभोंको, जो बीच में हारे बिना मेरे पास से अखंड जितेगा उसे में सहर्ष यह राज्य सौंप दूंगा ।

राजा की बात सुनकर राजकुमार सुन्न हो गये । वह कुछ भी जवाब न दे सके ।

परम परमात्मा श्री अरिहंत कहते है कि - कोई विशिष्ट साधना के बल से राजा को सहज जीता जा सकता है, पर जो जीव पुण्यसे प्राप्त मानवभव को व्यर्थ गंवाकर उन्हें फिरसे ऐसे मानवभवकी प्राप्ति दुर्लभ है ।

दृष्टांत - ९

धान्य राशी का दृष्टांत

अनेक प्रकारके धान्यसे भरी है यह धरती । यदि यह सब धान्य एकत्रित किया जाय और उसमें केवल अेक मुठ्ठीभर सरसों के दाने मिला दिया जाय । बराबर हिला दिया जाय, फिर अेक अत्यंत वृद्ध बुढी माँ जिनकी नजर भी मंद है उन्हे बुलाकर आज्ञा दी जाय - ''माताजी, तुम इन अनाज के दानों में से सरसव के दाने चुनकर निकाल दो । ''

उस वृद्ध माजी को इसमें सफलता मिलेगी क्या ?

देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवंत कहते है कि - किसी विशेष प्रयोग द्वारा उस अनाज के ढेर में से कदाचित सरसव के दाने अलग किये जा सकते हैं, पर एकबार मिले हुए मनुष्यभव को जो जीव प्रमादवश अकार्यमें, विषय-कषाय में गंवा देते हैं उन्हें फिरसे मानवभव हाथ लगना अत्यंत दुर्लभ है ।

दृष्टांत - १०

युग शमीला का दृष्टांत

जगजीवन जिनजी । सांभळो, दस दृष्टांते दोहिलो ।

अति भलो, नरभव काळ घणे लह्यो अे....

हे जगतके जीवनरुप जिनेश्वर भगवान मेरी बात सुनो, बहुत काल भटकते दस दृष्टान्तोंसे दुर्लभ अति उत्तम मानवभव अभी महापुण्य के उदयसे मैने पाया है । धर्म के साधन जितने मनुष्यभव में मिल सकते हैं वैसे दुसरे किसी भी गति में प्राप्त होना संभव नहीं ।

विश्व के भौतिक समृद्धि में जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ऐसे अनुत्तरवासी देव भी मानव भव की कामना करते हैं । उत्कृष्ट ऐसे विरति धर्म की प्राप्ति मानव के लिये सुलभ है, जब कि देवों के लिये

विरति धर्म दुर्लभ ही नहीं पर असंभवित है । विरति धर्म के अभाव में भौतिक सुख के पराकाष्ठा में भी देवों को दुःख का वेदन होता है । जो महान ऐसे मानवभव और विरति धर्म को पाने के बाद भी धर्म आराधनासे वंचित रह जाते है वे मूर्ख शिरोमणि हैं ।

अति परिश्रम से मिलाये हुए चिंतामणि रत्न को अज्ञानतासे खो देनेवाले मनुष्य जैसे सदा दारिद्य से पीडीत होता है, दुःखी दुःखी हो जाता है, उसी रीतसे अत्यंत कष्टसे मिलाये दुर्लभ मानवजीवन को प्राप्त करने पर भी धर्माराधना विना जो जीव मनुष्यभवको गँवा देते हैं उन्हें अनंतकाल तक संसार के विविध प्रकारके कष्ट सहन करने पडते हैं ।

मनुष्यभवकी दुर्लभता अपने जैसे अज्ञानी, मोहांध जीवोंको समझाने के लिये अनंत उपकारी महापुरुषोने दस दृष्टान्त बताये हैं । युग याने जुहाडा और समीला याने उसमें डालने का खिला, किलीका ।

हम रहते है वह जंबूद्वीप है । एक लाख योजन का है, उसके चारों और पानी है, वह लवण समुद्र है । यह लवण समुद्र दो लाख योजन चौडाईवाला है, लवणसमुद्र की परिधि लगभग सोलह लाख योजन की है । बीच में पानी की शिखा सोलह हजार योजन उंची है, नीचे चार बडे पाताल कलश है, उन पाताल कलशोमें पवन के जोर से पानी की शिखा उंची और उंची बढती जाती है ।

इस लवण समुद्र में किसी देव ने क्रीडा के कारण पूर्व में जुहाडा और पश्चिम में कीलीका डाली. इस तरह विरुद्ध दिशामें डाले हुए युग और शमिला एकसाथ आनेकी इच्छा रखें तो क्या शक्य है ?

देव कदाचित ऐसी आशा रखे पर सतत चलनेवाला पानीका प्रवाह और पवन का थपेडा क्या उन्हें एक होने देगा ? दोनो एकसाथ नहीं आ सकते तो कीलीका जुहाडे में कैसे बैठ सकेगी ?

देवाधिदेव का शासन कहता है कि कदाचित कोई चमत्कार घटने से दोनो एक हो जाय पर अति विकराल ऐसे इस संसार सागर में एक बार मानवभव हाथ से निकल गया तो उसकी पुनश्च प्राप्ति महा दुर्लभ है ।

ये दस दृष्टांत समझकर मिले हुए मानवजीवनकी दुर्लभतापर चिंतन करना चाहिये । मिला हुआ मानवभव निष्फल न जाय इसकी विशेष चिंता करना आवश्यक है । हे मानवी ! विश्व के संपूर्ण धनदौलत संपत्ति एकत्रित करने में आये फिर भी एक दिन के मनुष्यजीवनका मूल्य उससे ज्यादा है । ऐसी अनमोल वस्तु पाने के बाद - अनुत्तरवासी देव भी जिसकी झंखना करते हैं, ऐसे मानव भव को प्रमाद एवं विषय कषाय में गंवाया न जाय इसके लिये सब जागृत बन आराधनामें लग जायें ।

जीव-विचार

क्षणिक सुख हो या शाश्वत सुख हो उसकी प्राप्ति के उपाय क्या ? इसका जवाब देते हुए शास्त्र कहते है, '' विश्व की तमाम पुण्य प्रकृति और अन्ततः मुक्ति की प्राप्ति में कोई प्रबल तत्व काम करता हो तो वह है समस्त जीवराशी की हित चिंता के अद्‌भुत अध्यवसाय।''

कितनी सुंदर... मजे की बात है, विश्व के जीवों के हित की, सुख की, शांति की विचारणा करो, चिंतन करो और उसके द्वारा क्षणिक और शाश्वत सुख को प्राप्त करो। जीव मात्र का जीवत्व अमुल्य है, उसका मुल्य कभी भी नहीं लगा सकते, हीरा... पन्ना....मोती....माणेक सभी का मुल्य हो सकता है। ये सब पैसे के तराजु पर तौले जा सकते है, परंतु दुनिया में ऐसी एक भी वस्तु नहीं जिसके द्वारा जीव का जीवत्व तौल सकें....

जीव चींटी का हो या हाथी का...
मानव का हो या दानव का....
नारकी का हो या तिर्यंच का...

जीवमात्र का जीवत्व अनमोल है कारण कि जीवत्व यह सिध्दत्व की खान है । सिध्दत्व यह विमल...निर्मल...शुध्द सुवर्ण है तो जीवत्व समल...अशुध्द सुवर्ण है (इम्प्योर गोल्ड)।दोनो हैं तो सुवर्ण ही, सिध्दत्व की खान जीवत्व है। ये जीवत्व के धारक जीवों के प्रति जाने-अनजाने अन्याय न हो जाय उनके प्रति बेदरकारी, द्वेष, दुर्भाव न हो जाय इसके लिये साधक को सावधान रहना है, इसके लिये साधक के पास जीव-विचार का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

जीवन में जो एक बार जीवों की पहचान हो जाये उन में रहे हुये जीवत्व में सिध्दत्व प्राप्त करने की रही हुई शक्ति के दर्शन हो जाय तो उसे भिखारी में भी भावि सिध्द के दर्शन होगें । कुत्ते, बिल्ली, मच्छर, मख्खी, इल्ली, केचुअें, मिट्टी, पानी, अग्नि सभी में अनंत ज्ञान... दर्शन....चारित्र और वीर्य से भरे आत्मा के दर्शन होंगें। सभी के हितचिंतन की भावना जागृत होगी। जीवमात्र के जीवत्व के हितचिंतनरुप शुभ-भावना में तीर्थंकरत्व जैसी महान वस्तु भेंट स्वरुप मिलने.... पैदा करने का समार्थ्य है।

तो चलिये ! हम सभी आगम के अथाह समुंदर में से अपने लिये संक्षिप्त में तैयार किये गये ''जीव-विचार'' का अध्ययन करके जीवों के प्रति शुभ-अध्यवसाय का स्वामी बनने का पुरुषार्थ आरंभ करें।

पुज्यपाद शांतिसूरीश्वरजी म. जीव-विचार का प्रारंभ करते हुए कहते हैं -

भुवण पइवं वीरं, नमिउण भणामि अबुह बोहत्थं।
जीव सरुवं किंचिवि, जह भणियं पूव्वसूरीहिं ।।१।।

गाथार्थ - तीन भवन (लोक) में दीपक समान ऐसे श्री वीरप्रभु को नमस्कार करके... अज्ञानी जीवों के बोध के लिये, पूर्वाचार्यो ने कहा है उसी प्रकार मैं जीवों के स्वरुप को संक्षिप्त रुप में कहूँगा ।

प्रत्येक रचना में रचनाकार प्रथम गाथा में देव-गुरु को वंदन करके मांगलिक करते हैं, तथा रचना का हेतु संबंध और विषय बताते हैं । यहाँ भी पूज्यपाद शांतिसूरिजी महाराजा ने इसी क्रम से रचना का प्रारंभ किया है ।

तीन भवन में दीपक समान देवाधिदेव महावीर स्वामी को वंदना करके ग्रंथ की निर्विध्न पूर्णाहूति के लिये मांगलिक किया है ।

ग्रंथ का हेतु बताते हुये कहते है कि अज्ञानी जीवों के बोध के लिये इस ग्रंथ की रचना की है ।

ग्रंथ का विषय बताते हुए कहते हैं कि संक्षेप में जीव का स्वरुप कहुंगा और उसका संबंध बताते हुए कहते हैं कि पूर्वाचार्य भगवंतो ने जो कहा है वही कहूँगा ।

आइये ! हम अपने अज्ञान को दूर करने, विषय और संबंध को नजर समक्ष रख कर शासनपति श्री महावीरस्वामी को भाव से वंदन करके मांगलिक पूर्वक आगे बढे और जीव के स्वरुप को जाने ।

जीवा मुत्ता संसारिणोय, तस थावरा य संसारी ।

पुढवी जल जलण वाऊ, वणस्सई थावरा नेया ।। २।।

गाथार्थ - जीवों के मुक्त और संसारी ऐसे दो भेद हैं, संसारी जीवों के त्रस और स्थावर ऐसे दो भेद है । पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय ऐसे स्थावर के भेद है ।

विश्व में रहे हुए सभी जीवों को दो भागो में विभाजित कर सकते हैं - १) एक जो चार गतिमय संसार के परिभ्रमण से, जन्म मरण से और कर्म रज से सर्वथा मुक्त हो गये हैं । चौदह राजलोक के उपर सिध्दशीला पर बिराजमान है । ये जीव मोक्ष के जीव है, जो ''मुक्त'' के नाम से पहचाने जाते हैं ।

२) दुसरे जीव है जो चार गतिमय संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं । चार गति में जन्म मरण कर रहे हैं । सतत कर्मो को बाँध कर विविध प्रकार के सुख-दुख भोग रहे हैं । ये जीव ''संसारी '' जीवो के नाम से पहचाने जाते हैं. ।

मुक्त जीवों की विचारणा अभी बाजु में रखकर संसारी जीवों के भेद-प्रभेद समझाते हैं । संसारी जीव ''त्रस'' और ''स्थावर'' ऐसे दो प्रकार के हैं ।

त्रस नाम कर्म के उदय से जो जीव खुद की इच्छानुसार एक स्थान से दुसरे स्थान तक जा सकते हैं वो त्रस जीव कहलाते हैं, सामान्य से ये चलते फिरते जीव कहलाते हैं । जिनमें द्विइन्द्रिय से पंचेद्रिय जीवों का समावेश होता है ।

स्थावर नाम कर्म के उदय से जो जीव स्वेच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते वो जीव 'स्थावर'' कहलाते हैं । सामान्य से चल फिर नहीं सकने वाले अेकेन्द्रिय जीवों का इनमें समावेश होता है ।

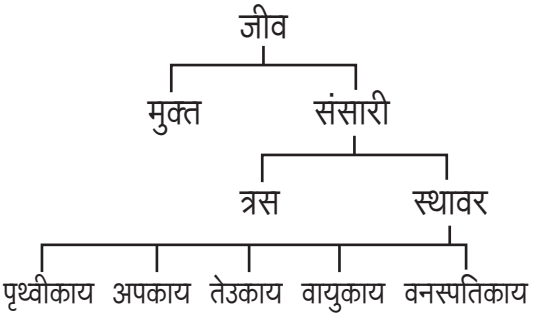

स्थावर जीवों के पांच भेद है :-

१) पृथ्वीकाय : विविध प्रकार के मिट्टी, पाषाण और खदान के जीव
२) अपकाय : विविध प्रकार के पानी के जीव
३) तेउकाय : विविध प्रकार के अग्नि के जीव
४) वायुकाय : विविध प्रकार के हवा के जीव
५) वनस्पतिकाय : विविध प्रकार के वनस्पति के जीव

ये पांच प्रकार के जीव स्वेच्छा से चलना-फिरना नहीं कर सकते, परंतु इनमें भी प्रचंड शक्ति है । हम इन सभी के साथ शुभ भाव पूर्वक व्यवहार करें तो ये सभी हमारे लिये सहायक बनते हैं, परंतु इनके प्रति अपनी क्रुरता अथवा दयाहीन करुणाहीन व्यवहार विनाश को आमंत्रण देता है ।

ये पांच स्थावर पंचमहाभूत कहलाते है । जीवन जीने के लिये आवश्यक है, परंतु हम इन्हें अकारण हैरान परेशान करें, हम अपनी मर्यादा भूल जायें तब ''सौ सुनार की एक लुहार की'' की तरह ये पांचो महाभूत कल्पनातीत विनाश करके बदला लेते हैं ।

भूकंप, सायक्लोन, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ, बॉम्ब ब्लास्ट, अग्नि वगैरह के द्वारा ये पांचो महाभूत बदला लेते हैं । इनके क्रोध को ठंडा करने के लिये हमें अपनी मर्यादाओं में रहना पडेगा । अनर्थदंड याने बिना कारण ही जीवसृष्टि को हैरान परेशान करने की प्रवृत्ति त्यागना पडेगा ।

इन सभी के लिये हमें इस जीवसृष्टि को विशेष से जानने समझने का प्रयत्न करना है ।

पृथ्विकाय - पृथ्विकाय स्थावर का प्रथम भेद है । यह जानने के साथ ही जिज्ञासु व्यक्ति को प्रश्न होता है कि पृथ्विकाय में किसका - किसका समावेश होता है ? इसलिये पृथ्विकाय के भेदों का परिचय कराते हुए पूज्यपाद शांतिसूरिजी म.सा. कहते है.-

फलिह मणि रयण विद्दुम, हिंगुल हरियाल मणसिल रसिंदा ।
कणगाइ धाउ सेढ़ी, वन्निय अरणेट्ठय पलेवा ।। ३ ।।
अब्भय तूरी उसं, मट्ठी पाहाण जाईओ णेगा ।
सोवी रंजण लूणा इ, पुढवी भेयाई, इच्चाई ।। ४ ।।

गाथार्थ - स्फटिक, मणि, रत्न, प्रवाल, हिंगुल, हरताल, मणशील, पारा, सुवर्ण, वगैरह सात धातुये (सोना, चांदी, सीसा, कलई, जसत, लोहा) खडी,

पाषाण, अभ्रक, तेजंतुरी, मिट्टी और पत्थर की अनेक जातियाँ सुरमा, नमक, सिंधव वगैरह पृथ्विकाय के भेद हैं।

उपरोक्त पदार्थ सहज ही समझ सके ऐसे हैं ? ये सभी पदार्थ खान (खदान) में होते हैं, तब उनमें जीव होता है, वो बढते भी हैं, परंतु खदान से बाहर निकालने के पश्चात धीरे धीरे उसमे से जीव निकल (च्यव) जाता है जो बाकी रहता है वो उनका शरीर होता है।

मिट्टी, नमक, खार सभी पृथ्वीकाय के एक कण में असंख्य जीव होते हैं। हमारी सावधानी असंख्य जीवो को अभयदान दे सकती है।

अपकाय

पृथ्वीकाय के जीवो का आंशिक परिचय पाने के बाद अब हम उपकाय के जीवों को जाने

भोमंतरिमुदगं, ओसाहिमकरग हरितणू महिया।
हंति घणोदधिमाई, भेया णे गाय आउस्स ।। ५ ।।

गाथार्थ - पृथ्वी का (कुअे वगैरहका) आकाश का (बरसात) पानी, ओस का, बरफका, ओले का, हरीघास के उपर का ग्वारपाठे का, घनोदधि वगैरह का पानी ये सभी अपकाय (पानी के) भेद हैं।

सभी प्रकार का पानी स्वयं जीवमय है। पानी की एक बूंद में असंख्य जीव हैं। हम पानी का ग्लास पूरा भरते हैं, आधा पीते हैं, आधा फेंक देते हैं। कितने जीवों के प्राण लिये ? हृदय में कोई वेदना होती है ? हम किसी दुख का अनुभव करते हैं ? इन जीवों के प्रति मन में दया करुणा की भावना जागती है ? इनके दुःख से दुःखी होते है ? स्वयं अपने आप से प्रश्न पूछे...., चिन्तन करें... जवाब मिल जायेगा। इन जीवो के प्रति दया करुणा की भावना ने अइमुत्ता बाल मुनि को केवल्य की भेंट प्रदान की।

इन जीवों के प्रति प्रेम-मैत्री की भावना हमें फालतु पाप से बचा कर प्रचंड पुन्य अवश्य प्राप्त करायेगी। विचार कर देखना।

चित्र : स्थावर जीवों के भेद

चित्र : त्रस एवं स्थावर जीव

नव - तत्व

हम जैन है....

जिन के.....जिनेश्वर के भक्त है अनुयायी हैं.... जिन के आराधक हैं.... सेवक हैं....पूजक है... क्या जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करते हो ?

क्या जिनपूजा की विधि जानते हो ?

तो एक महत्व का प्रश्न पूछ लेते हैं....

जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा का एक एक अंग अणु-अणु पावन हैं... पवित्र है...पूजनीय है... तो फिर नव अंग ही पूजा क्यों ? याद आता है वो दोहा....

उपदेशक नव तत्व के, तेणे नव अंग जिणंद ।
पूजो बहुविध भाव से, कहे शुभवीर मुणिंद ।।

अरिहंत परमात्मा के उपदेश का सार ''नव-तत्व'' है, जहाँ जहाँ जब जब अरिहंत प्रभु देशना देते हैं तब तब उस उपदेश में नव तत्व में से कोई न कोई तत्व होता है । नव तत्व के बिना देशना नहीं और इस नवतत्व को जान कर उस पर श्रद्धा आ गई तो अपना बेडा पार, नवतत्व उपर श्रध्दा यही सम्यग दर्शन है, मोक्ष मार्ग की नींव है । आईये ऐसे नवतत्व को जानने का, समझने का, जीवन में उतारने का यथा शक्ति प्रयत्न करेंगे ।

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावाऽसव संवरो य निज्जरणा ।
बंदो मुक्खो य तहा, नवतत्ता हुं ति नायव्वा ।। १।।

गाथार्थ - जीव - अजीव - पुण्य - पाप - आश्रव - संवर - निर्जरा - बंध और मोक्ष ये नवतत्व जानना ।

विश्व विविध प्रकार की वस्तु और व्यक्तिओं का भंडार है । पदार्थ अलग अलग प्रकार के हैं, जीव अलग अलग प्रकार के हैं । इन सभी का मूल वो तत्व कहलाता है । जिस तरह जितने भी विविध प्रकार के जीव-जंतु हैं, जीवित जीव हैं इन सभी का मूल जीव-तत्व है ।

घर...महल...अलमारी...पलंग...टेबल वगैरह निर्जीव पदार्थ हैं, इन सभी का मूल अजीव तत्व है । इस तरह इन मुख्य तत्वों को विस्तार से नवतत्व शास्त्रों में बताया गया है, इन्हें सामान्य से हम जानने का प्रयत्न करेंगें ।

चेतना सहित हो तथा प्राण धारण करें वो जीव तत्व है । जीयें वो जीव हैं । जीवतत्व से विपरित चेतना रहित जड स्वभाववाला अजीवतत्व है । जिससे शुभकर्म के पुद्गलों का संचय हों और जिससे अनुकुलता तथा सुख का अनुभव हो वो पुण्य तत्व है ।

पुण्य तत्व से विपरित जिससे अशुभ कर्म के पुदगलों का संचय हो और जिससे प्रतिकुलता तथा दुख का अनुभव हो वो पापतत्व है । हिंसा आदि क्रियाओं द्वारा जो नये कर्म उपार्जन के कारण तथा मार्ग हैं वो आश्रव तत्व है ।

व्रत, नियम, संयम वगैरह के द्वारा आने वाले कर्म रुकें वो संवर तत्व है । विविध बाह्य तथा अभ्यंतर तप के द्वारा धीमे धीमे कर्मो का क्षय होना वो निर्जरा तत्व है । मिथ्यात्व आदि कारणों से नये कर्मो का आत्म प्रदेश के साथ मिल जाना बंध तत्व है ।

संवर और निर्जरा के द्वारा सर्वथा सभी कर्मो का क्षय होना वो मोक्ष तत्व है । ये सभी नवतत्व की द्रव्य से व्याख्यायें हैं । अब हम भाव से नव-तत्व को समझने का प्रयत्न करेंगें । ज्ञान-दर्शनादि भाव प्राणों को धारण करे वो भाव जीव है । स्वयंकी मुख्य अर्थ-क्रिया में प्रवर्तित हो अथवा पुदगल आदि ये ''द्रव्य

अजीव'' और वर्णआदि परिणाम वह ''भाव अजीव'' शुभकर्म बंध में निमित्तरुप जीव के शुभ अध्यवसाय वह भाव पुण्य है ।

अशुभ कर्म बंध में कारण रुप जीव के अशुभ अध्यवसाय वह भाव पाप है । शुभ- अशुभ कर्म के आगमन में कारणरुप बनते जीव के शुभ-अशुभ अध्यवसाय वह भाव संवर है । शुभ-अशुभ कर्म के आगमन को रोकने में कारण रुप बनते जीव के अध्यवसाय वह भाव संवर है । कर्मो के देशक्षय में कारणरुप बनते जीव के अध्यवसाय वह भाव निर्जरा है ।

द्रव्यबंध में कारणरुप बनते जीव के अध्यवसाय वह भाव बंध है । कर्मो के संपूर्ण क्षय होने में कारणरुप बनता आत्मा का परिणाम वह भाव मोक्ष है ।

चउदस चउदस बाया लीसा बासीय हुंति बायाला ।
सतावन बारस चउ नव भेया कमेणेसिं ।। २।।

चौदह-चौदह, बयालीस, बयासी, बयालीस, सत्तावन, बारह,चार और नव भेद (नव-तत्व के) क्रम से है ।

जीव तत्व - १४ भेद, अजीव तत्व - १४ भेद, पुण्यतत्व - ४२ भेद, पापतत्व - ८२ भेद, आश्रव तत्व - ४२ भेद, संवर तत्व - ५७ भेद, निर्जरा तत्व - १२ भेद, बंधतत्व - ४ भेद, मोक्षतत्व - ९ भेद इस कुल मिलाकर नव तत्व के २७६ भेद होते हैं ।

हेय-ज्ञेय- उपादेय :

नव तत्व में कुछ तत्व जानने योग्य हैं । (ज्ञेय)
कुछ तत्व त्यागने योग्य (छोडने योग्य) हैं । (हेय)
कुछ तत्व ग्रहण करने योग्य हैं। (उपादेय)
ज्ञेय तत्व - जीव और अजीव ।
हेय तत्व - (पुण्य) पाप, आश्रव और बन्ध ।
उपादेय तत्व - संवर, निर्जरा, मोक्ष और पुण्यतत्व ।

अंत में पुण्य तत्व भी छोडना है, परंतु श्रावक को खास ग्रहण करने योग्य है । साधु को अपवाद रुप ही ग्रहण करना है । पाप अगर लोहे की बेडी है तो पुण्य सोने की बेडी है । अंतत : मोक्ष जाने में दोनों ही बेडी रुप हैं ।

संख्या भेद

नवतत्व का अेक दूसरे में समावेश करने से ७-५ और २ तत्व भी गिने जाते हैं ।

● पाप यह अशुभ कर्म का आश्रव है....पुण्य यह शुभ कर्म का आश्रव है, इस तरह दोंनो आश्रव है इससे आश्रव तत्व में पुण्य पाप समा जाते है, जिससे तत्व सात होते हैं ।

● आश्रव, पुण्य और पाप में तीन तत्वों का समावेश बन्ध तत्व में हो सकता है । उसी तरह निर्जरा और मोक्ष का एक तत्व में समावेश हो सकता है, जिससे तत्व पाँच होते हैं ।

● संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तीनों जीव स्वरुप होने से जीव तत्व है तथा पाप, पुण्य, आश्रव और बंध ये चार तत्व अजीव स्वरुप होने से अजीव तत्व है, इससे तत्व दो ही होते हैं ।

रुपी-अरुपी :

जीव अरुपी है परंतु यहाँ संसारी जीव होने से वह रुपी है ।संवर-निर्जरा और मोक्ष जीव के परिणाम स्वरुप है.... परिणाम अरुपी है इससे ये तीनों तत्व अरुपी हैं ।

अजीव रुपी है साथ साथ पुण्य-पाप-आश्रव-बन्ध भी अजीव रुपी होने से रुपी हैं ।

इससे कुल नव तत्व के भेदों मे ८८ भेद अरुपी है, १८८ भेद रुपी है ।
कुल नवतत्व के भेद में ९२ भेद जीव है, १८४ भेद अजीव है ।
कुल नवतत्व के भेद में २८ भेद ज्ञेय हैं । (जानने योग्य)

नवतत्व के २७६ भेदों का पृथक्करण -

नवतत्व	जीव	अजीव	रुपी	अरुपी	ज्ञेय वगैरह
जीव	१४	००	१४	१०	१४ ज्ञेय
अजीव	००	१४	०४	१०	१४ ज्ञेय
पुण्य	००	४२	४२	००	४२ उपादेय
पाप	००	८२	८२	००	८२ हेय
आश्रव	००	४२	४२	००	४२ हेय
संवर	५७	००	००	५७	५७ उपादेय
निर्जरा	१२	००	००	१२	१२ उपादेय
बंध	००	०४	०४	००	०४ हेय
मोक्ष	०९	००	००	०९	०९ उपादेय
	९२	१८४	१८८	८८	२७६

कुल नवतत्व के भेद में १२८ भेद हेय है। (त्यागने योग्य)
कुल नवतत्व के भेद में १२० भेद उपादेय है (ग्रहण करने योग्य)

इस तरह संक्षेप में नवतत्व को समझ कर आगे एक एक तत्व को विस्तार से समझाया जायेगा।

ज्ञेय याने जानने योग्य..१४ + १४ = २८
हेय याने त्यागने योग्य.... ८२ + ४२ + ४ = १२८
उपादेय याने ग्रहण करने योग्य.....
४२ + ५७ + १२ + ९ = १२०
कुल.....२७६

अेगविह दुविह तिविहा, चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा।
चेयण तस इयरेंहिं वेय गई करण काअेहिं ।। ३ ।।

अेक प्रकार से, दो प्रकार से, तीन प्रकार से, चार प्रकार से, पाँच प्रकार से तथा छ प्रकार से जीव चैतन्य, त्रस और (इतर) स्थावर, वेद, गति, इन्द्रिय तथा काया के आधार पर है। जीव के विविध दृष्टि से छः प्रकार से भेद करने में आये है।

१. चैतन्य की अपेक्षा से सभी जीवों का एक ही प्रकार में समावेश होता है।

जहाँ जीव है वहाँ चैतन्य है.... जहाँ चैतन्य है वहाँ जीव है। अेकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के...सभी जाति के... सभी गति के....सभी वेद के.....सभी इन्द्रिय और कायावाले जीवो में चैतन्य है। सभी का ही इस प्रकार में समावेश होता है।

२) त्रस और इतर याने स्थावर की अपेक्षा से सभी जीव दो प्रकार के हैं.... सभी जीवों का इन दो प्रकार में समावेश होता है।

स्व इच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सके वे त्रस जीव हैं। स्व इच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके वे स्थावर जीव हैं।

विश्व के सभी जीवों का त्रस स्थावर की अपेक्षा से विभाजित किया जाय तो दो ही प्रकार होते हैं - तीसरा संभव नहीं। विश्व का कोई भी जीव हो या तो त्रस है अथवा स्थावर है। उदाहरण तौर पर - इल्ली,मच्छर, मक्खी, हाथी, बैल वगैरह जीव चल-फिर सकते हैं, इससे ये त्रस जीव हैं। झाड, पानी,

हवा, पत्थर वगैरह जीव स्व इच्छा से ऐक स्थान से दुसरे स्थान पर जा नहीं सकते इससे ये स्थावर कहलाते हैं ।

३) वेद की अपेक्षा से जीव तीन प्रकार के हैं । सभी जीवों का तीन वेद में समावेश होता है । वेद के तीन प्रकार है -

१) स्त्री वेद २) पुरुष वेद ३) नपुसंक वेद

विश्व के प्रत्येक जीवों का तीन में से एक प्रकार में समावेश होता है ।

४) गति की अपेक्षा से जीव के चार प्रकार है । सभी जीवों का चार गति में समावेश हो जाता है ।

गति चार है - १) नरक गति २) तिर्यंच गति ३) मनुष्य गति ४) देव गति

कोई भी जीव का गति की अपेक्षा से इन चार में से एक प्रकार में समावेश होता है । उद. झाड, स्वाति, शंख, सिंह, वानर, पद्मावती देवी, विमलेश्वर यक्ष, शालीभद्र वगैरह का एक एक गति में समावेश होता है ।

झाड, शंख, सिंह, वानर वगैरह तिर्थंच गति के जीव हैं । स्वाति - शालीभद्र वगैरह मनुष्य गति के जीव हैं ।

पद्मावती देवी, विमलेश्वर यक्ष वगैरह देवगति के जीव हैं । नारको नरक गति के जीव है ।

इन्द्रियों की अपेक्षा से जीव पाँच प्रकार के हैं -

१) अेकेन्द्रिय - उदा. हीरा, माणेक, भींडी, तुरिया, मग, वाल हवा, पाणी, अग्नि वगैरह ।

२) व्दिइन्द्रिय - उदा. शंख, कोडी, केंचुअे वगैरे ।

३) तेइन्द्रिय - उदा. जू, चिंटी, दीमक, चिंटा ।

३) चौरेन्द्रिय - उदा. मक्खी, मच्छर, पतंगा, खटमल ।

४) पंचेन्द्रिय - उदा. देव, मनुष्य, हंस, बगुला, कुत्ता, बिल्ली वगैरह ।

५) काय की अपेक्षा से जीव ६ प्रकार के हैं । छः काय में सभी जीवों का समावेश हो जाता है ।

१) पृथ्वीकाय - अभ्रक, तेजंतुरी, सभी धातुंयें, पाषाण का समावेश होता है ।

२) अपकाय - विविध प्रकार की पानी का समावेश इसमें होता है ।

३) तेउकाय - विविध प्रकार के अग्निओं का इसमें समावेश होता है ।

४) वायुकाय - विविध प्रकार की हवाओं का इसमें समावेश होता है ।

५) वनस्पतीकाय - विविध प्रकार की वनस्पतिओं का इसमें समावेश होता है ।

६) त्रसकाय - सभी चलते-फिरते द्विइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों का इनमें समावेश होता है ।

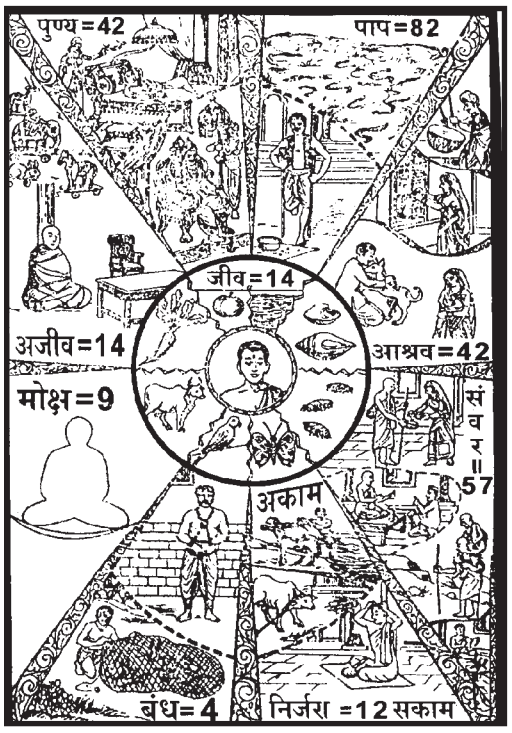

●●●● तीर्थंकर जीवन चरित्र ●●●●

इस अवसर्पिणी काल में प्रथम धर्म प्रवर्तक अनंत उपकारी प्रभु श्री ऋषभदेव हुए हैं । सम्यकत्वप्राप्ति के बाद प्रभु के तेरह भव हुअे है ।

प्रभु प्रथम भव में इस जंबुव्दीप के विदेहक्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठित नगर में धन नामक सार्थवाह थे । उन्होने अपने सार्थ में रहे हुए आचार्य - धर्मघोषसूरि से प्रतिबोध पाकर सम्यक्त्व प्राप्त किया । अतः उस भव से उनके भवयात्रा की गिनती हुई ।

दुसरे भव में उत्तरकुरु में युगलिया हुए । तीसरे भव में प्रथम देवलोक में देव हुए । चौथे भव में जंबुव्दीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में गांधिलावती, विजय में महाबल नामक राजा हुए । पांचवे भव में दुसरे देवलोक में ललितांग नामक देव हुए । छठवे भव में इस जंबुव्दीप के महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नगर में राजा हुए । सातवे भव में उत्तर कुरु क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नगर में जीवानंद नामक वैद्य हुए । दसवे भव में मित्रों सहित बारहवे देवलोक गये । ग्यारहवें भव में जंबुव्दीपके महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय की पुंडरिकिणी नगरी में पूर्वमित्रों सहित बंधुरुप में उत्पन्न हुए । उनमें प्रभुका जीव वज्रनाभ चक्रवर्ती हुआ । उन्होंने छह भाईयों के साथ दीक्षा ली ।

उनमें प्रभुके जीव वज्रनाभ मुनिने वीसस्थानक तप की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया । बारह वे भव में छह बंधु-मुनि सर्वार्थ विमान में उत्पन्न हुए, और तेरहवे भव में ऋषभदेव हुए - इस तरह तेरह भव जानना ।

अरिहंत ऋषभदेव के चार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्र में हुए थे, अभिजित नक्षत्रमें पांचवा कल्याणक हुआ । कोशला में जन्म होने के कारण कौशलिक कहलाने वाले श्री ऋषभदेव उत्तराषाढा नक्षत्र में च्यवकर गर्भ में आये । उत्तराषाढा नक्षत्र में जन्म हुआ । उत्तराषाढा नक्षत्र में दिक्षा लेनेवाले हुए, और उत्तराषाढा नक्षत्र में केवलज्ञान पाये तथा अभिजित नक्षत्र में मोक्ष गये ।

कौशलिक अरिहंत श्री ऋषभदेव आषाढ (गुजराती जेठ) वदि चौथ के दिन तैंतीस सागरोपम का देवायुष्य पूर्ण कर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान से च्यवकर इस जंबूद्वीप के भरतखंड के इक्ष्वाकुभूमि में नाभि कुलकरकी पत्नी मरुदेवा के उदर में मध्यरात्री के समय उत्तराषाढा नक्षत्र में चन्द्रयोग प्राप्त होने पर गर्भ में उत्पन्न हुअे । नाभिकुलकर के प्रसंगसे यहाँ कुलकरों के उत्पत्तिविषयक जानकारी देते हैं ।

इस अवसर्पिणी के तीसरे आरे को पूर्ण होने में और पल्योपम का आठवाँ भाग शेष था । तब क्रम से सात कुलकर हुए । पश्चिम महाविदेह में दो बनिये मित्र थे । उनमें से एक सरल था, दुसरा कपटी था ? वे दोनों साथ में व्यापार करते थे । जब जब आवक बाँटी जाती तब तब कपटी सरल को ठगकर ज्यादा भाग ले लेता था । एक बार सरल मित्र की पत्नी को देखकर कपटीने विषय-याचना की, परंतु पवित्र ऐसी उसी स्त्री ने उसकी बात का स्वीकार नहीं किया, इसपर उस श्याम मुखवाले मित्र ने सरल मित्र को कहा कि '' तेरी पत्नीने मेरे पास भोग याचना की, मैने उसकी बात को स्वीकारा नहीं '' ।

फिर सरल स्वभावी मित्र घर गया तब उसकी पत्नीने जो बात घटित हुई थी सो कथन की । अतः

संसार के ऐसे स्वरुप को देखकर वैराग्यवासित हुए वे दोनों धर्मकार्योंमें जीवन व्यतीत करने लगे । मृत्यु पाकर वे इक्ष्वाकुभूमिमें युगलिक हुए । कपटी मरकर वहाँ हाथी हुआ ।

उसने अपने पूर्व भव के मित्र युगलिया को देखा और उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ । उसने पूर्व भव देखा और प्रसन्न होकर युगल को सूंढ से उठाकर पीठपर बैठाकर चलने लगा । इस हाथी का रंग श्वेत था अतः उस युगलिया को अन्य युगलिया विमलवाहन कहकर बुलाने लगे । कालप्रभावसे कल्पवृक्ष कम होने लगे । अतः युगलियों में कलह होने लगा । तब उस विमलवाहन ने कल्पवृक्ष बाँट दिये । तब वे अपने अपने मालिकी के कल्पवृक्ष संभाल कर रहने लगे । फिर भी कभी कलह होता तो उनके लिये ''हा कार'' दंडनिति विमलवाहन कुलकर ने प्रवर्तित की । उस विमलवाहन को चन्द्रयशा पत्नी थी । उनकी उंचाई नवसो धनुष्य थी । उस प्रथम कुलकर वमिलवाहनको चक्षुष्मान पुत्र हुआ । उसकी चंद्रकान्ता भार्या थी । उनकी उंचाई आठसो धनुष्य की थी ।

उस दुसरे कुलकर चक्षुष्मान को यशस्वान पुत्र हुआ । उसकी पत्नी सुरुपा थी । उनकी उंचाई सातसो धनुष्य थी । उस तीसरे कुलकर के समय में कोई भी ''हाकार'' नीति को मानते नहीं थे । उनके लिये उस कुलकर ने ''माकारदंड'' निति प्रवर्तायी । उस यशस्वान् को ''अभिचन्द्र'' पुत्र हुआ । उसे प्रीतिरुपा पत्नी थी । उनकी उंचाई छह सौ पचास धनुष्य की थी । इस चौथे कुलकर को प्रसेनजीत पुत्र हुआ । उसे चक्षुष्मती नामक पत्नी थी । उनके शरीर की उंचाई छसौ धनुष्य की थी । उस कुलकर ने ''हाकार, माकार'' नामक दोनों नीतियों को न माननेवालों के लिये ''धिक्कार'' नितिकी प्रवर्तना की । धिक्कार की निति से उस समय के युगलीया बहुतही शर्माकर श्याम मुखवाले हो जाते थे ।

पांचवे कुलकर प्रसेनजित को ''मरुदेव'' नामक पुत्र हुआ । उसकी कांता नामक पत्नी हुई । उनकी उंचाई पांचसौ पचास धनुष्य की थी । उनके समय में तीनों नितियाँ थी । उस छठ्ठे मरुदेव कुलकरको नाभि नामक पुत्र हुआ उसे मरुदेवा नामक पुत्री हुई । उनका शरीर मान पांचसौ पचीस धनुष्यका था । वे सातवे कुलकर थे ।

श्री नाभि कुलकर की पत्नी मरुदेवा के उदर में प्रभु गर्भरुप आये तब तीन ज्ञानयुक्त थे । मैं देवलोकसे च्यवुंगा ऐसा देव जानते थे, परंतु च्यवते हुए प्रभु नहीं जानते, और मेरा च्यवन हो गया है ऐसा प्रभु जानते है ।

मरुदेवा माता ने चौदह स्वप्न देखे । कौशलिक श्री ऋषभदेव अरिहंत फागुन माह के कृष्ण पक्ष के अष्टमी को नौ महिने पूर्ण होनेपर उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर आरोग्यसंपन्न मरुदेवा माता ने आरोग्यवान ऐसे पुत्र को जन्म दिया ।

देवलोक में से आये हुए, अद्‌भूत रुपवान, सौम्य आकारवाले, चंद्र जैसे शीतल मुखवाले, सौभाग्ययुक्त शरीरवाले अनेक देव-देवियोंसे घिरे हुए, सर्व गुण युक्त युगलिक मनुष्यों में सबसे अधिक शोभायमान, ऐसे ऋषभदेव प्रभु वृद्धि प्राप्त करते हुए जब भोजन की इच्छा होती तब देवोंद्वारा अमृतसिंचित अंगूठे को चूसते है । दूसरे तीर्थंकर भी इसी तरह बाल्यावस्था में अमृत सिंचित अंगुठे को चूसते हैं, और फिर अग्नि से पके हुए आहार का भोजन करते । जब कि ऋषभदेव

तो दीक्षा ली तब तक याने तिरासीलाख पूर्व वर्ष तक देवोंने लाये हुए देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के कल्पवृक्षोंके फलोंका आहार करते थे ।

वंश स्थापना - श्री ऋषभदेव जब लगभग एक वर्ष के हुए, तब प्रभुके वंश की स्थापना करना ऐसा इन्द्र का आचार है ऐसा सोचकर और खाली हाथ प्रभुके पास नहीं जाते ऐसा सोचकर गन्ना लेकर इन्द्र नाभिकुलकर के गोद में बैठे हुए प्रभुके पास आये. तब गन्ना देखकर उसे लेने बाल प्रभुने हाथ लंबाया तब 'आप गन्ना खाओगे?' ऐसा कहकर प्रभु के हाथ में इंद्रने गन्ना दिया, प्रभु को इक्षु का अभिलाष हुआ अतः प्रभु का वंश इक्ष्वाकु नामक हो ऐसा कहकर इंद्र ने वंश स्थापना की । प्रभुका गोत्र तो काश्यप था ।

प्रभु यौवन अवस्था में आये । प्रभु की देहलता एक हजार आठ उत्तम लक्षणों से युक्त थी । प्रभु का वर्ण तप्त सुवर्ण जैसा पीत और तेजस्वी था । प्रभु की काया पांचसौ धनुष्य उंची और समचतुरस्त्र संस्थानवाली थी । प्रभु का संघयण वज्र ऋषभ नाराच था । प्रभु का देह उपरसे यदि पहाड पर गिरे तो पहाड का चूरेचूरा हो जाय, पर प्रभु के देह, को खरौंच तक न लगे ऐसी उनकी शक्ति थी ।

किसी युगल को मातापिता तालवृक्ष के नीचे रखकर किसी काम के लिये गये थे, तब दैवयोग से ताड का फल टूटकर लडके के उपर पडा । उससे बालक तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ । यह पहला अकाल मृत्यु इस अवसर्पिणी में हुआ । अब मातापिता स्वर्गवासी होने के बाद बालिका अकेली हो गयी । वह जंगल में यहाँ वहाँ घूमती यौवन को प्राप्त हुई ।

युगलिकोंने उस सुंदर युवति को नाभि कुलकर के पास लाया । यह सुंदर स्वरुपवान कन्या ऋषभ की पत्नी होगी ऐसा कहकर नाभि कुलकर ने युगलियों को विदा किया । फिर सुनंदा और सुमंगला के साथ बडे होते हुऐ युवान हुए, तब इंद्र ने विचार किया प्रथम 'जिन' को विवाह करवाने का हमारा आचार है । ऐसा सोचकर बहुत देवदेवियों के परिवार के साथ वहाँ आकर वर संबंधी कर्तव्य खुद ने किया, और कन्याओं के संबंध में कार्य देवीओंने किया । इस तरह विवाह हुआ । फिर सुनंदा और सुमंगला के साथ समय व्यतीत करते हुए प्रभु को सुमंगला से भरत एवं ब्राम्ही रुप युगल उत्पन्न हुए । सुनंदासे बाहुबली और सुंदरी रुप युगल उत्पन्न हुए । उसके बाद अनुक्रम से सुमंगलासे अन्य उनपचास पुत्ररुप युगल उत्पन्न हुए ।

राज्यभिषेक और कुलस्थापना

कल्पवृक्षों का प्रभाव घटने से युगलियाओं तीनों नीतियोंका उल्लंघन करने लगे । ऋषभकुमारने राज्य-अनुशासन के बारे में शिक्षा दी । ऋषभकुमार को ही अपना राजा करने के लिये युगलिक जल लेने गये । इंद्र ने अवधिज्ञान से देखकर राज्यभिषेक का समय जानकर वे वहां आये । राज्यभिषेक किया । पृथ्वीतल पर ऋषभकुमार प्रथम राजा हुए । राज्य व्यवस्था के लिये उग्रभोग, राज्यन्य, और क्षत्रिय कुलों की स्थापना प्रभु ने की ।

उस वक्त कल्पवृक्षों का विच्छेद होने से लोग कंदमूल आदि खाने लगे । यह अनर्थ टालने के लिये

प्रभुने अपना कल्प (आचार) जानकर असि-मासि-कृषि की व्यवस्था स्थापन की । पांच प्रकार के शिल्प का ज्ञान दिया । पांच शिल्प के बीस बीस मूलभेद मिलाकर सौ प्रकार के शिल्प तबसे प्रचलित हुए । इस समय अग्नि प्रगट हुई । प्रभु ने अन्न पकाने की विद्या सिखाई । प्रभु ने भरत, बाहुबली आदि पुरुषों की ७२ कलायें और ब्राम्ही सुंदरी को स्त्रियोंकी ६४ (चौसठ) कलायें सिखाई । ब्राम्हीको अठ्ठारह लिपियां और सुंदरी को बायें हाथ से किया जानेवाला गणित सिखाया । भरत को विनीता का मुख्य राज्य दिया । तथा बाहुबली को बहली देश में तक्षशिला का राज्य दिया । बाकी के अठ्ठानवे पुत्रों को भी अलग अलग राज्य दिये । तिरासी लाख पूर्व प्रमाण काल बितते आया ।

विज्ञप्ति करनेके आचारवाले याने जितकल्पिक ऐसे लोकांतिक देव प्रभु के पास आये - अत्यंत इष्ट ऐसे वाणी से प्रभु को कहा कि, 'हे समृद्धिवंत । हे कल्याणकर देव । आप की जय हो । विजय हो ।' कहकर ' आप विश्वकल्याण करनेवाला धर्मतीर्थ प्रवर्तावो' ऐसी विनंती की । फिर प्रभुने गोत्रवालों को धन बाँट दिया सांवत्सरिक दान दिया । फागुन वदि अष्टमी के दिन, दिने उतरते प्रहर में सुदर्शना नामक शिबिका में बैठकर मनुष्य देव और असुरों से अनुसरित ऐसे प्रभु विनीता नगरी के बाहर निकलकर जहाँ सिध्दार्थ नामक उद्यान में अशोक नामक श्रेष्ठ वृक्ष के पास आये । वहां शिबिका से उतर कर वस्त्रालंकार उतार कर स्वयंही चार मुष्टि लोच किया । तब शेष रहे हुए एक मुष्टि लोच के केशोंकी लट प्रभु के सुवर्णसमान वर्णवाले कंधे के उपर सुवर्णकलश पर नीलकमलकी माला शोभायमान हो वैसे सुंदर लगते थे । यह देख आनंदित हुए इंद्र ने विनंती की कि, 'कृपा करकर 'प्रभु' अब इतने केश रहने दो तो अच्छा'' इंद्र के प्रार्थना के कारण प्रभु ने पांचवी मृष्टि लोच के केश लोच किये बिना रहने दिया । अतः चार मुष्टि लोच कर निर्जल छट्ठ तपसे चार हजार पुरुषों के साथ इंद्रने दिया हुआ अेक देवदूष्य वस्त्र लेकर द्रव्य एवं भाव लोच करके गृहवास से निकले हुए प्रभुने साधुपना स्वीकारा । उस समय प्रभु को चौथा मनःपर्यंव ज्ञान उत्पन्न हुआ ।